सहायक वाचन

साहित्य जीवन को संस्कारित करता है। वह जीवन में संवेदना-विस्तार का आधार बनता है और मनुष्य को विवेक सम्पन्न भी बनाता है। साहित्य जीवन में अक्षय आनन्द का स्रोत है। उसमें निहित अनुभूति समाज और व्यक्ति के बीच सामंजस्य को प्रकट करती है। इसमें परम्पराओं, इतिहास और संस्कृति का रचनात्मक स्तर पर समावेश रहता है। इस आधार पर साहित्य, जीवन बोध को जगाने में अपनी सार्थक भूमिका निभाता है। जीवन के प्रति आस्था, समाज के प्रति सहानुभूति और प्राणिमात्र के प्रति करुणा जगाने में साहित्य की अपनी महत्ता है। इसमें सामाजिक परिवर्तन की शक्ति निहित है। इसी आधार पर साहित्य पीढ़ियों को दिशा देने में समर्थ होता है। साहित्य के पठन-पाठन का अवसर अपनी अनेक व्यस्तताओं के बीच भी निकाल लेने वाले लोग जीवन का भरपूर आनन्द उठाते हैं - उन्हें जीवन जीने की कला आ जाती है। इसीलिए कहा गया है कि 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' अर्थात बुद्धिमान मनुष्यों का समय काव्य शास्त्र के विनोद में ही व्यतीत होता है।

छात्र अपने समय और समाज से सम्यक रूप से परिचित हो सकें और अपने व्यक्तित्व का सही दिशा में विकास कर सकें। इस हेतु उसे अच्छे साहित्य से परिचित कराना जरूरी है। सहजतापूर्वक वह साहित्य से जीवन प्रेरणाएँ ग्रहण कर सके तथा इस आधार पर वह एक समुन्नत जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त कर सकें। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर द्रुत पठन के रूप में सहायक वाचन जैसे संकलन की उपयोगिता को महत्वपूर्ण माना गया। प्रस्तुत खंड सहायक वाचन के रूप में ही निर्धारित है। साहित्य के विस्तृत क्षेत्र से अपने व्यक्तित्व विकास हेतु विद्यार्थी कुछ अच्छी रचनाओं से परिचित हो सकें। इसी उद्देश्य से सहायक वाचन में संकलित रचनाओं का चयन किया गया है। यहाँ यह ध्यान रखा गया है कि ऐसा साहित्य प्रेरक और रोचक हो, जीवन में सत् भावनाओं को जागृत करने वाला हो। आज जबकि हमारा युवा निरन्तर अच्छे साहित्य से विमुख होता जा रहा है। तब उसमें साहित्य के प्रति उत्सुकता जगाने के लिए भी हमारा यह प्रयास है। किशोर वर्ग में अपने राष्ट्र और अपने समाज के प्रति कर्त्तव्य भावनाएँ जागृत कर उसकी राष्ट्र-निर्माण एवं समाज-निर्माण में एक सही भूमिका निर्धारित करना भी इस तरह की पाठ्य-सामग्री को प्रस्तुत करने में हमारा उद्देश्य रहा है। छात्र अपनी जिज्ञासाओं का समुचित समाधान भी इन रचनाओं के माध्यम से पा सकेगा।

छात्रों के भीतर सृजनात्मक शक्तियाँ जागृत करना तथा उन्हें भाषा की सर्जनात्मक चेतना से परिचित कराना भी हमारा उद्देश्य है। छात्र अपनी भाषा में समुचित दक्षता प्राप्त कर सके। उसका शब्द भण्डार भी समृद्ध हो सके। सहायक-वाचन का यह खण्ड इस रूप में भी सहयोगी हो सकता है।

संक्षिप्त में द्रुतपठन के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार है -

1. पढ़ने में छात्रों की गति बढ़ाना,
2. स्वाध्याय के लिए प्रेरित करना,
3. स्वतंत्र पठन की प्रवृत्ति को जगाना,
4. समय के सदुपयोग हेतु प्रेरित करना,
5. मौलिक सृजन और चिंतन जागृत करना,
6. स्वदेश और अपने समाज के प्रति प्रेम और आस्था भाव जगाना,
7. बदलते परिवेश के प्रति सार्थक अनुकूलन करना,
8. समुचित समझ का विकास करना,
9. शिक्षा के सर्वांगीण विकास के उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति।

इन आधारों पर इस संकलन में विधा वैविध्य और विषय वैविध्य का ध्यान रखा गया है। कविता, संस्मरण, पत्र, आत्मकथा, पौराणिक संदर्भ लघुकथाएँ, यात्रा-वृत्तांत, निबंध लोक साहित्य आदि इस संकलन में संग्रहीत हैं। इसी तरह ज्ञान-विज्ञान से संबंधित रचनाओं तथा अन्य भाव-प्रवण रचनाओं का भी इस संकलन में समावेश है।

पाठ्यसामग्री को विद्यार्थी अच्छी तरह से समझ सकें, इस हेतु प्रत्येक पाठ के अंत में बोध-प्रश्न एवं शब्दार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। आशा है यह प्रयास छात्रों को लाभप्रद सिद्ध होगा।

लोक संस्कृति की स्मृति रेखा : नर्मदा

- डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

पिछले दिनों अमरकंटक की यात्रा करने का अवसर अनायास सुलभ हुआ। मन में अमरकंटक की एक छवि थी, पढ़े, सुने के आधार पर निर्मित एक बाँकी-सी छवि। जब मैं चौथी कक्षा में पढ़ता था, तब अमरकंटक पर उसमें एक पाठ पढ़ाया जाता था। एक चित्र भी तब उस पाठ के साथ पुस्तक में छपा था, ऊँचे पहाड़ से गिरती जलधारा का। चित्र के नीचे शीर्षक था कपिलधारा। पाठ तो याद नहीं रहा- समय के प्रवाह में शब्दों के भीतर फैला अमरकंटक का जुगराफिया फेडअप होता गया - केवल चेतना में वह चित्र टंगा रहा और जब भी कोई अमरकंटक की चर्चा करता तब कपिलधारा का वह चित्र मेरे भीतर से नमूदार हो उठता था। स्मृति में अमरकंटक इतना ही भर था। बाद में एक यात्रा-विवरण पढ़ने को मिला। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अज्ञेय अमरकंटक की यात्रा पर आए थे। अपनी यात्रा को केन्द्र बनाकर यात्रा विवरण लिखा वह अमरकंटक की प्राकृतिक भूभौतिकी के साथ भावुक मन की प्रतिक्रियाओं के रूप में था। इस यात्रा-विवरण ने मेरे भीतर अमरकंटक को देखने की तीव्र उत्सुकता जगाई।

फिर एक निबंध डॉ. विद्या निवास मिश्र का 'अमरकंटक की सालती स्मृति' पढ़ा। इस निबंध ने अमकंटक मेरे स्मृति-वितान में और विस्तारित किया। प्राकृत और संस्कृत साहित्य में तो अमरकंटक का स्मरण करते हुए - इसे आम्रकूट का संबोधन दिया था - बाद में वही आम्रकूट अमरकंटक बन गया। लोक भाषा में उतरकर 'आम्र' अमर बना और 'कूट' कंटक बना । अच्छा ही हुआ एक नई अर्थच्छवि आम्रकूट को मिली, अन्यथा न तो अब आम के छतनार वन हैं और न बाँस के वे भिरे जिनका वर्णन कालिदास के मेघदूत में है।

पुराण और लोक में स्मृति जीवी अमरकंटक आज सचमुच एक अनियारे काँटे की तरह ही है - नर्मदा के इस उद्‌गम स्थल के साथ न जाने कितनी-कितनी मीठी भेदक-चरफर स्मृतियाँ आज भी इस नुकीले शिखरी मेकल नभ की आभा में दिपदिपाती हैं।

इन स्मृतियों में डूबकर ही मैंने कटनी और बिलासपुर को जोड़ने वाली रेलवे लाईन के पेन्ड्रा रोड स्टेशन पर भोर में अपनी आँखे खोली। पेंड्रा रोड से लगभग चालीस किलोमीटर की यात्रा बस मार्ग से करना थी। रात्रि के अंतिम प्रहर का सुरमई उजास में बदलता अँधेरा हमारे आसपास था, हमारी जीप पहाड़ों की ऊँचाई नाप रही थी। दोनों ओर से सघन वृक्षों से सरसराती हवा हमें छू रही थी। जाती ठंड के दिन थे, किंतु शरीर में फुरहरी जाग रही थी। शरीर में मितली सी उठी, तो मैंने सोचा रात्रि जागरण का दुष्परिणाम हो सकता है।

अमरकंटक की केन्द्रीय सत्ता तो नर्मदा ही है। नर्मदा जिस ऊँचाई से अपना आकार ग्रहण करती हैं - वह कोई निर्धारित ऊँचाई नहीं है - बहुत शांत और एकांत विस्तार से नर्मदा जन्म लेती है। पुराण कहते हैं कि नर्मदा का जन्म शंकर के श्रम-सीकरों से हुआ है। यह जो मेकल की पहाड़ी है, इसकी दक्षिण दिशा में प्रसारकामी है - सतपुड़ा; और इसकी उत्तरी सीमा में फैला हुआ है - विंध्य । प्रकृति का जो विहंगम दृश्य यहाँ निर्मित होता है - वह समाधिस्थ महादेव शंकर की कल्पना के रूप में ही प्रकट होता है। जैसे समाधिलीन शंकर की एक भुजा सतपुड़ा हो और एक भुजा विंध्य हो और मेकल का उन्नत शीर्ष ही शंकर का पवित्र मस्तक हो। इसी मस्तक पर नर्मदा के जन्मस्थानी जल-कण जैसे शंकर के मस्तक पर उभरी पसीनें की बूँदे हों। महादेव शंकर आर्य और अनार्य दोनों के परमाराध्य हैं। इस प्राकृतिक विन्यास में शंकर का यही स्वरूप व्यक्त है। देवाधिदेव शंकर आदि पुरुष हैं। आदि पुरुष के श्रम-सीकरों से संभव नर्मदा आदि नदी

है। गोंडवाना की इस आदि भूमि पर करोड़ों वर्ष पूर्व नर्मदा का अस्तित्व था। इसलिए सनातन नदी है और जिस स्थान से वह निसृत होती है – वह सनातन तीर्थ है। आम्रकूट के इस नर्मदा उद्‌गम बिन्दु से ही मानो संस्कृतियों की यात्रा प्रारंभ होती है। नर्मदा, भारत की लोक संस्कृति की स्मृति रेखा है। विंध्याचल का यह भू–भाग जिसकी चट्टानी छाती पर से नर्मदा बहती है, विश्व की आदि संस्कृति को अपने गर्भ में छिपाए हुए है। नर्मदा के आसपास प्राप्त उत्खनन से यह सत्य उद्‌घाटित हुआ है कि नर्मदा की घाटी की संस्कृति संरचना का इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। जब हिमालय ने जन्म नहीं लिया था, तब सतपुड़ा और विंध्य की संधिस्थली इस मेकल शैल माला से जैसे नर्मदा नदी ही प्रस्रवित नहीं हुई थी बल्कि एक विराट जीवन–धारा ही यहाँ से गतिशील हुई थी। अमरकंटक में नर्मदा को जन्म देने वाला शिव का रूपक कितना अर्थवान है। यह हमारी जातीय स्मृतियों की सर्जनात्मक प्रसंगोद्‌गर्भी उद्‌भावना भी है। आदि देव शंकर के श्रम–सीकरों से जन्म लेने वाली नर्मदा मानवीय जीवन के वृतांत की वह रचना है, जिसमें श्रम जन्य आनंद का आलोड़न–विलोड़न है। जो विंध्य और सतपुड़ा की जातियों के श्रांत काले शरीरों के पसीने की धार की तरह काली–काली चट्टानों को तोड़ती फोड़ती प्रवाहशीला है। शंकर तो कर्पूर गौर तब हुए जब वे हिमालय के कैलाश शिखर पर आरूढ़ हुए। शंकर की जटाओं से गंगावतरण का दिव्य रूप भी शिवपुरुष की इसी छवि से संबंधित है, किंतु नर्मदा को जन्म देने वाले शंकर गोंड, कोरकू और अन्य दक्षिणवर्ती जातियों के आराध्य हैं। उनके रंग रूप के अनुरूप ही काले पत्थर की पिण्डी में आकृतिवान होने वाले पहाड़ों, खाईयों, खेतों–खलिहानों में उनके साथ–साथ चलने वाले औघड़दानी शिव लोकचित्त के अनुरूप देवता हैं। यही वजह है कि लोक देवता के शरीर से निसृत नर्मदा सदैव लोक नदी की तरह स्मरण की जाती है। नर्मदा के उत्स के पास ही हम लोग खड़े थे। एक छोटी सी मंदिराकृति एक कुंड के बीचों बीच थी। एक विशाल चौगान में तीर्थ यात्री आवाजाही कर रहे थे। गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश से लेकर धुर दक्षिण तक के तीर्थयात्री उस भीड़ में अपनी वेशभूषा से इस मध्यप्रदेश में भारत की रंग–बिरंगी छवि को प्रस्तुत कर रहे थे। नर्मदा का स्रोत कुंड वाला अपना स्थान बदलता रहा है। यह प्रश्न हमारे मन में इसलिए कौंधा कि इस कुंड के ऊपर भी एक कुंड–स्मृति स्थित है – वहीं एक प्राचीन शिव मंदिर भी है।

नर्मदा के उत्स कुंड से थोड़ा – सा ऊपर चलने पर 'माई की बगिया' है। माई की बगिया पहाड़ी ढलान पर है। जैसे पहाड़ को काटकर एक बगीची बनाई गई है। एक जल–धार भी यहाँ से प्रवाहित है। कुछ मंदिर भी यहाँ हैं। अब बगीची का बहुत सुव्यवस्थित रूप यहाँ नहीं है, किंतु नाम के आधार पर यह प्रकट है कि यह बगीची रही होगी, अभी यहाँ गुलबकावली के फूल खिले हुए थे। हमारी जिज्ञासाएँ ही हमें स्थानों से प्रतिक्रिया करने के लिए बाध्य करती हैं। हमने वहाँ बैठे कुछ संतो से पूछा कि यह नाम 'माई की बगिया' किस ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करता है – वे पहले तो कुछ असमंजस में दिखे, किंतु उन्होने एक रूपक को याद करते हुए हमें बताया। माई तो यहाँ नर्मदा ही हैं। हमने कहा – केवल अमरकंटक में ही नहीं – नर्मदा तो पूरे देश में माई ही है। वे बोले – 'हाँ माई नर्मदा बचपन में यहाँ अपनी सहेलियों के साथ खेलने आती थीं । जब वे नाराज होकर पश्चिम की ओर गतिशील हुईं तब उनकी सहेलियाँ उनके वियोग में गुलबकावली बन गई हैं। ये जो गुलबकावली के फूल देख रहे हो ये सब उनकी सहेलियाँ थीं' हम अचरज से भरे इस कथानक को सुन रहे थे और नदियों के फूल बन जाने की इस लोककथा का सत्य तलाशने में जुट गए थे। लगता है यहाँ कुछ और जल धारायें रही होंगी – नर्मदा तब इन जलधाराओं के साथ ही विचरणशील हुई होंगी – बाद में भू–भौतिकी ने कुछ करवट ली होगी और नर्मदा की प्रवाह दिशा बदल गई होगी, उनकी सहचरी जलधाराएँ कराल काल का ताप सहते–सहते सूख गई होंगी। उनकी सूखती स्मृतियों को लोक मानस ने तब फूलों में तब्दील कर दिया होगा। लेकिन गुलबकावली के फूल तो भारतीय परिवेश में अति प्राचीन नहीं हैं। हो सकता है ये फूल किन्हीं और फूलों को विस्थापित

करते हुए यहाँ जम गए हों। जो भी हो यह स्थान मनोरम है और कल्पना के घोड़ों को पंख लगाकर अतीत के आकाश में उड़ने को बाध्य कर देता हैं। आँखे जुड़ाती माई की बगिया का सौदर्य आसव बनकर शीशियों में उतर आया था। जब मैं यात्रा पर चला था तब मेरे गाँव के लोगों ने मुझसे कहा था कि माई की बगिया में आँखों की दवा मिलती है। लेते आना। सचमुच, वहाँ के गुलबकावली के फूलों से उतारी गई दवा वहाँ बिक रही थी। खण्डवा के डॉ. श्रीराम परिहार का फोन आया है कि माई की बगिया की दवा ने आँखों को बहुत शुकून दिया है। अमरकंटक आँख को ठंडा करता है, गुलबकावली के 'सत' से, तो हिमालय आँख को ठंडा करता है- अपने ममीरे के माध्यम से यहाँ पहाड़ों का आँख से रिश्ता है। माई की बगिया एकदम लोक आधारित कथानक है। जिसमें नर्मदा का मानवीय रूप प्रकट होता है।

लोक- गाथाएँ इतिहास के वे अमृत कुंड है, जहाँ से इतिहास की धाराएँ अपने अनेक रूपों में फूटती हैं। नर्मदा के जन्म क्षेत्र अमरकंटक में भी लोक गाथाओं का विचित्र किंतु सहज विश्वासी रूप समाया हुआ है। नर्मदा पश्चिम प्रवाहिनी हुई होगी, भू-भौतिकी परिवर्तनों के कारण, किंतु लोगों ने इसे अपनी स्मृति में एक कथा का रूप ही दे दिया। लोक में प्रचलित सोन और नर्मदा की प्रणय-कथा लोक की मिथकीय सृष्टि है। यह कथा - लीला भी अमरकंटक के इसी भूभाग पर जन्म लेती है। महाभारत में शोण और ज्योतिरथ्या के संगमन की चर्चा है। 'शोणस्य ज्योतिरथ्याया: संगमे नियत: शुचि:। तर्पयित्वा पितृहन देवान निग्नष्ठोम फलं लभेत्।' शोण और ज्योतिरथ्या नदी के इस संगम पर जो तर्पण करते हैं, वे अपने पितरों और देवताओं को प्रसन्न करते हैं और अग्निष्ठोम यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। शोण और ज्योतिरथ्या क्रमश: सोन और जोहिला हैं।

सोन अपने उद्‌गम के साथ ही सैकड़ों फुट की ऊँचाई से नीचे गिरती है जबकि नर्मदा अपने उत्स कुंड से निकलकर एकदम शांत और सूक्ष्म रूप में बहती है। अपने उद्‌गम कुंड से चार-पाँच किलोमीटर की दूरी तक नर्मदा की क्षीणधारा का मंथर स्वभाव, उसके असल स्वरूप को प्रकट नहीं कर पाता जब वह 'कपिल धारा' के रूप में पहाड़ पर खड़ी ऊँचाई से कूदती है, तब नर्मदा का शक्ति आस्फालन लगातार टूटते स्फटिक जैसी सफेदी में प्रकट होती है। ऊँचाइयों को झुकाता उन्हें तोड़ता-मरोड़ता उन्हें घिसता-पिसता ही नर्मदा का चरफर स्वभाव और व्यक्तित्व उसे एक क्वांरी नदी की पहचान देता है।

इसे कपिलधारा इसलिए कहा जाता है कि कभी इस स्थल पर कपिलमुनि ने तपस्या की थी। अमरकंटक तपस्या स्थली है। न जाने कितने तपस्वी इस स्थल पर तपस्या करके अपनी उर्ध्व गति को प्राप्त हुए होंगे। किंतु मेरा मन जो अतीत और वर्तमान की धूप छाँह में अमरकंटक को अनुभव कर रहा था, वह यह मानते हुए भी कि यहाँ कपिलमुनि तपस्यारत रहे होंगे। एक नए भौगोलिक रूपक का विन्यास करने लगता है। 'कपिलधारा' का नामकरण मुझे बार-बार कपिला गौ से जोड़ रहा था, और मुझे लग रहा था जैसे यह नामकरण कपिला की शुभ्रता की समता पर ही किया गया है। नर्मदा का यह जल-प्रपात अपनी आकृति, अपने रंग में एकदम गाय जैसा दिखता है - इसी प्रपात के नीचे एक छोटा प्रपात है - यही कोई आधा किलोमीटर की नीचाई पर, इसे दूध धारा नाम दिया गया है। इन नामकरणों के पीछे गाय का ही रूपक है। कपिलधारा के रूप में जब नर्मदा नीचे छलाँग लगाती है, तब अतल में पड़ी-खड़ी विशाल चट्टानों की छाती दमच जाती है। करोड़ो वर्षो से नर्मदा इस गिरि गह्वर में अपनी बूँदों से हजारों इंद्रधनुष रच रही है।

कपिलधारा के एकदम नीचे पहुँचना आसान नहीं है। कूद-फाँद करके ही उस तक पहुँचा जा सकता है। पसीना-पसीना होते पहुँचिए तो नर्मदा की अमृत बूँदे फिर हमें तरोताजा कर देती हैं - लेकिन ऊपर ऊर्ध्वाधर आड़ी चट्टानों में लटके मधु-मक्खियों के छत्रों ने हमें भयभीत कर दिया। उल्लास और भय के बीच ही मधु का निवास है किंतु भयरहित होकर ही इस मधु का पान किया जा सकता है। अमरकंटक ऐसा ही 'मधु' क्षरित करता है - अपनी बीहड़ता में।

कुछ तंत्र-मंत्र साधकों ने यहाँ अपने स्थाई साधना-स्थल भी बना लिए हैं। अमरकंटक का एकांत किसे नहीं लुभाता है। यह क्षेत्र एक तरह का सिद्धि क्षेत्र है - इसलिए इसके चतुर्दिक् अनेक ऋषि-मुनि अपनी साधना में रत रहे हैं - इन ऋषियों-मुनियों के नाम से यहाँ अनेक ऐसे सिद्धाश्रम हैं जो जन-आस्था के केन्द्र हैं। तीर्थ-यात्री इन केन्द्रों की यात्रा करते हैं - और अमरकंटक की पावनता से परिचित ही नहीं होते, अपितु अपने भीतर भी इस भाव से भर उठते हैं।

नर्मदाष्टक की ध्वनियों को अपने कर्ण-कुहरों में बसाए हम अमरकंटक से वापस हो रहे थे। हमारी जीप ढलानों की आड़ी-तिरछी सीधी-सर्पिल सड़क को रौंदती हुई पेन्ड्रा रोड की दिशा में गतिशील थी, तभी मार्ग में एक मंदिर दिखा। मंदिर के पास एक कुआँ था - कुआँ पर कुछ पनिहारिनें पानी भर रही थीं। वे माई नर्मदा के गीत गा रही थीं। सहयात्री को कुआँ देखकर प्यास लगी। हम लोग नीचे उतरे। मंदिर के भीतर विराजे देवता के दर्शन किए। वहाँ उपस्थित साधुओं ने बताया कि यह जोहिला नदी का उद्‌गम स्थल है। मंदिर के समानांतर ही एक कुंड था - यही कुंड ही जोहिला का जन्म स्थान है। जोहिला के उत्स-कुंड में बहुत थोड़ा-सा जल था। आगे धार सूख गई थी। जोहिला का प्रवाह आगे सोन में संगम करती है। अमरकंटक का प्राकृतिक सौंदर्य उसे प्रकृत तीर्थ की तरह ही उपाख्यापित करता है। इसलिए इसकी निसर्ग महिमा इसे अलौकिक बनाती है, किंतु यह क्षेत्र लोक और शास्त्र की आँखों से निहारने पर ही अपनी सर्म्पूणता में प्रकट होता है - और अपनी सिद्धि भावना को विस्तारित करता है। अभी भी यहाँ के जंगलों में, पहाड़ों में हठयोगी मिल जाते हैं : हम लोगों ने अनेक जटिल और कठिन आसनों को लगाने वाले हठ योगी इस प्रकृत भूमि में देखे। तीर्थ की सहजता ही उसे दिव्य भाव प्रदान करती है। यह दिव्यता यदि अमरकंटक में अभी भी विद्यमान है तो यह अमरकंटक की वानस्पतिक और भू-भौतिक संरचना में भी तलाशी जा सकती है।

महाभारत में नर्मदा के स्रोत की चर्चा करते हुए इसके प्राकृतिक परिवेश की भी चर्चा की गई है, आम, प्रियंगु और बेल के पेड़ों से आच्छादित यह क्षेत्र अपनी हरीतिमा के सौन्दर्य से जनमन को आकर्षित करने वाला रहा है। इस नदी को प्रत्यक्स्रोता कहा गया है। 'प्रियङ्ग्वाम्र वणोपेता वानीर फल मालिनी प्रत्यक्स्रोता नदी पुण्या नर्मदा तत्व भारत।'

आर्या शप्तशती के कवि ने भी अमरकंटक से निसृता नर्मदा के प्यारे रूप का विवेचन अपनी कविताओं में किया है - 'मुक्तारबरै धावतु निपतत् सहसा निम्नगावास्तु। इत्यमेव नर्मदा ममवंश प्रभावन्तु रूप रसा।' आकाश मार्ग से नीचे आई त्रिपथगा गंगा भले ही आकाश गंगा, पातालगंगा और मर्त्यलोक की भागीरथी गंगा लोगों की दृष्टि में महिमा मंडित हो - मुझे तो केश गुल्मों से उद्‌भूत सुस्वादु जलवाली नर्मदा ही प्रिय है। कालिदास ने अपने ग्रंथों में नर्मदा के उत्स-वनों का जो मानवीकरण किया है - वह तो काव्य की उपलब्धि भी है, और नर्मदा के सौन्दर्य का असीमित वर्णन भी है। प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों ने भी आम्रकूटिनी नर्मदा का वर्णन सरसता के साथ किया है। 'आम बहला वणाल मुहला जरं कुणों जलं सिसिरं। अण्वावारिणं वि रेवाई तटवी अंकी गुणा के वि।' अमरकंटक स्मृतियों की भूमि है। स्मृतियों की चुभन की भूमि है इसलिए यह स्मृति शल्य बहुत दिनों तक हृदय में धँसा रहता है और बार-बार अमरकंटक की यात्रा करने के लिए प्रेरित करता रहता है। हमारी यात्रा तो समाप्त हो गई थी किंतु अमरकंटक से निसृत होने वाली नर्मदा ने हमें एक नया जीवन दिया था - विपरीत से विपरीत को पार करने की ताकत हमें अमरकंटक से निकलने वाली एक सीधी-सादी नदी ने अपने वेगमान आचरण से दी है। अमकंटक हम फिर आएँगे - तुम्हारी आत्मीयता प्रकृति की आत्मीयता है - जिसमें हमारी उपस्थिति उतनी ही ऊँची है - जितनी तुम्हारी शैलशृंग मालाएँ हैं-हमारी हिम्मत उतनी ही अडिग है, जितनी नर्मदा की पतली सी धार की कटान है। जो खड़ी प्रस्तरी ऊँचाइयों को भी झुका देती है - अमरकंटक तुमसे हमने निर्भीकता पाई है- एकांत की साथी बनकर हमारी निर्भीकता हमें जो शक्तियाँ देती है, वे लोक में सिद्धियों का विकल्प बन जाती हैं। अमरकंटक तुम्हें प्रणाम!

अभ्यास

बोध प्रश्न -

1. अमरकंटक पहुँचने के लिए लेखक द्वारा बनाए गए मार्ग की रूपरेखा लिखिए।
2. 'कपिलधारा' नामकरण से लेखक ने कपिलधारा को किस तरह व्याख्यायित किया है ?
3. मधुछत्रों का वर्णन करते हुए लेखक ने मधु को प्राप्त करने की क्या विधि बतलाई है ?
4. कुआँ पर पनहारिनें क्या कर रही थी ? वे किसके गीत गा रही थी ?
5. पुराणों में नर्मदा की उत्पत्ति का वर्णन किस तरह से किया गया है ?
6. नर्मदा और सोन से संबंधित लोक कथा लिखिए।
7. 'माई की बगिया' का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
8. ''विपरीत से विपरीत को पार करने की ताकत हमें अमरकंटक से निकलने वाली एक सीधी-सादी नदी ने अपने वेगवान आचरण से दी है '' इस कथन से लेखक का क्या आशय है ? लिखिए ।

योग्यता-विस्तार

1. आपने किसी दर्शनीय स्थल का भ्रमण किया होगा, उसे यात्रा-वृतान्त के रूप में लिखिए।
2. आपके गाँव/शहर के समीप बहने वाली नदी का उद्‌गम स्थल तथा उसके बहने का मार्ग पता कीजिए।
3. अमरकंटक के चित्रों को खोजकर उसका अलबम तैयार कीजिए।

शब्दार्थ

नमूदार= प्रकट, जाहिर। **अनियारे**= कँटीला, बाँका, बहादुर। **सुरमई**=सुरमे के रंग का, हल्का नीला। **आलोड़न-विलोड़न**=मथना, बिलौना। **मधु**=शहद, मद्य, पुण्यरस। **उत्स**=स्रोत, सोता, जलमय स्थान।

तेरे घर पहिले होता विश्व सबेरा!

- माखनलाल चतुर्वेदी

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है, मुक्त साँस गरबीली,
लाँघ सात लाँबी सदियों को हुई शृंखला ढीली ।

टूटी नहीं कि लगा अभी तक उपनिवेश का दाग,
अरे तिरंगे तुझे उड़ाएँ जगा जगा कर आग ।

उठ रण–राते ओ बलखाते विजयी भारतवर्ष,
नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज माप रहे उत्कर्ष।

ओ पूरब के प्रलयी पंथी ओ जग के सेनानी,
होने दे भूकम्प कि तूने आज भृकुटियाँ तानी ।

तेरे नभ पर उड़ जाते हैं वायुयान ये किसके ?
भुजवज्रों पर मुक्तिस्वर्ण को क्यों न देख ले घिसके ?

तीन ओर सागर लहराता, लहरें दौड़ी आतीं,
चरणभुजा कटिबंध भूमि तक वे अभिषेक सजातीं।

उठ पूरब के प्रहरी पश्चिम घूर रहा घर तेरा,
साबित कर तेरे घर पहले होता विश्व सबेरा।

सूझों में, साँसों में, सागर में, श्रम में, ज्वारों में,
जीने में, मरने में, प्रतिभा में, आविष्कारों में ।

तुझ पर पड़ तो किरणें झूठी हो जातीं, जग पाता,
जीने के ये मंत्र रक्त से लिक्खों भाग्य–विधाता।

तीन तरफ सागर की लहरें, जिनका बने बसेरा,
पतवारों पर नियति सजावे जिसके साँझ सबेरा।

बनती हों मल्लाह मुट्ठियाँ जहाँ भाग्य की रेखा,
रतनाकर टकरा–टकरा कर दे रतनों का लेखा।

उस लहरीले घर के झंडे देश–देश में लहरें,
लहरों में जाग्रत नर प्रहरी कभी न गति में ठहरें।

चिन्तक चिन्ता–धारा तेरी विश्व प्राण पा बैठी,
रे योद्धा प्रत्यंचा तेरी उठ कि बाण पा बैठी।

प्रबल शत्रु का वेग कुचल विजयी हो देश तुम्हारा,
लाल किले के झंडे में अंगुलि-निर्देश तुम्हारा ।

ब्रिटिश राज जब टुकड़े टुकड़े हुआ कि फिर किसका भय,
उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, लख तेरी ही जय जय ।

मस्तक पर दायित्व, भुजा में शस्त्र दृगों में ज्वाला,
तेरी हुँकारों पर उमड़े कोटि-कोटि जयमाला।

तीस करोड़ धड़ों पर जीवित तीस कोटि ये सिर हैं,
तुम संकेत करो कि हथेली पर हँस कर हाजिर हैं।

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. 'नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज माप रहे उत्कर्ष' का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. 'उपनिवेश के दाग' को कवि ने किसे कहा है? स्पष्ट कीजिए।
3. कवि स्वतंत्रता को स्थायी रखने के लिए क्या चाहता है ?
4. प्रस्तुत कविता का केन्द्रीय-भाव स्पष्ट कीजिए।
5. 'तेरे घर पहिले होता विश्व सबेरा' कविता के माध्यम से कवि क्या सन्देश देना चाहता है ?
6. कवि देश को आत्म निर्भर बनाने के लिए क्या चाहता है ?

योग्यता विस्तार

1. माखनलाल चतुर्वेदी की उक्त कविता स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखी गई है, ऐसी ही अन्य कविताओं का संकलन तैयार कीजिए।
2. भारत के मानचित्र में सागरों की स्थिति का अवलोकन कर रेखाचित्र तैयार कीजिए।
3. हिन्दी के ऐसे कवियों की सूची तैयार कीजिए जिन्होंने राष्ट्रप्रेम से संबंधित कविताओं की रचना की हो।

शब्दार्थ

शृंखला=जंजीर। **रणराते**=युद्ध में रंगे हुए। **उत्कर्ष**=उन्नति। **रत्नाकर**=समुद्र। **दृग**=नेत्र। **कोटि**=करोड़। **प्रत्यंचा**=धनुष की डोरी। **प्रहरी**=पहरेदार। **कटिबंध**=कमर में बाँधा जाने वाला गहना/पट्टा। **रक्त**=खून

शल्य चिकित्सा के प्रवर्तक - सुश्रुत

- डॉ. यतीश अग्रवाल

भारत की एक बहुत प्राचीन नगरी है – वाराणसी। गंगा की निर्मल धारा सहस्त्रो वर्षों से इसके आँचल में मचल-मचल कर बहती रही है। इस नगरी का अपना सैकड़ों वर्ष पुराना वैभवशाली इतिहास है। हमेशा से यह नगरी शिक्षा का बड़ा केन्द्र रही है। प्राचीनकाल में यह काशी राज्य की राजधानी थी।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। गंगा तट से थोड़ी दूर एक पाठशाला थी। वहाँ आयुर्वेद (जीवनदान देने वाली कला) की शिक्षा दी जाती थी। दूर-दूर से विद्यार्थी यहाँ आते और शल्य-चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करते। इस पवित्र मंदिर के द्वार केवल उनके लिए खुले थे, जिनका मन मानव सेवा और प्रेम से ओतप्रोत होता था, जिनमें साधना और कठोर परिश्रम करने की लगन होती थी।

इस पाठशाला के आचार्य थे महर्षि सुश्रुत। शल्य चिकित्सक के रूप में उनका यश चारों दिशाओं में दूर-दूर तक फैला हुआ था। वे स्वयं काशी के राजा दिवोदास के शिष्य थे। दिवोदास को भगवान धन्वंतरी का अवतार कहा गया है।

सुश्रुत के प्रारंभिक जीवन के बारे में आज कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। बस, इतना ही कहा जा सकता है कि उनके पिता का नाम विश्वामित्र था और उनका बाल्यकाल गंगा की पावन लहरों से खेलते हुए बीता था। बड़े होने पर उन्होंने काशी के राजा, महान चिकित्साशास्त्री दिवोदास की देखरेख में चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और वे अपने समय के अद्वितीय शल्य चिकित्सक हुए। अपने जीवनकाल में उन्होंने बहुत सी नई शल्य तकनीकें विकसित कीं, जो आगे चलकर बहुत से शल्य-चिकित्सकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं। उनके द्वारा रचित चिकित्सा ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' एक महान ग्रंथ है। यह ग्रंथ इस तथ्य का जीवंत प्रमाण है कि प्राचीन भारत के चिकित्सक, चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अपने समय से बहुत आगे थे।

सुश्रुत संहिता से हमें शल्य चिकित्सा की विशद् जानकारी मिलती है। इसमें कुल मिलाकर 120 अध्याय हैं और इन्हें छह भागों में बाँटा गया है – सूत्रस्थान, निदानस्थान, शरीरस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान और उत्तरस्थान।

इस ग्रंथ में शल्य चिकित्सा की विधियों और उसमें काम आने वाले यंत्रों तथा शस्त्रों के बारे में व्यापक जानकारी दी गई है। शरीर के किसी भाग में मवाद पड़ जाने पर चीरा लगाना आवश्यक होता है, यह महत्वपूर्ण तथ्य सुश्रुत से छिपा न था। उन्होंने इस बारे में स्पष्ट जानकारी दी है कि इस स्थिति में चीरा कैसे और कहाँ लगाएँ। इसी तरह जब शरीर के कुछ अंग जलवृद्धि के कारण फूल जाएँ तो उनका जल सूई द्वारा कैसे खींच लेना चाहिए, यह विधि भी उपयुक्त रूप से बताई गई है। मूत्राशय की पथरी, भगंदर और बवासीर के ऑपरेशन और मोतियाबिंद की शल्यक्रिया के साथ-साथ, ज़रूरत पड़ने पर माँ के गर्भ में चीरा लगाकर शिशु को जन्म देने की शल्यक्रिया और दंतचिकित्सा तथा अस्थिचिकित्सा की बारीकियों का अनूठा वर्णन भी 'सुश्रुत संहिता' में मिलता है। इसके अलावा काया श्रृंगार (प्लास्टिक सर्जरी) से जुड़े तरह-तरह के ऑपरेशन भी विस्तार से वर्णित हैं।

सुश्रुत संहिता में शल्य यंत्रों की संख्या 101 बताई गई है। इन यंत्रों को हिंस्र पशु तथा पक्षियों के मुँह के आकार के अनुसार नाम दिए गए हैं, जैसे – सिंहमुख (सिंह के मुख जैसा), गृध्रमुख (गिद्ध के मुँह जैसा), मक्रमुख (मगरमच्छ के मुँह जैसा) आदि। ये यंत्र आधुनिक शल्य यंत्रों से किसी भी तरह कम न थे। इनके साथ ही 20 और शल्य यंत्र भी वर्णित हैं। इनके नाम हैं – मंडलाग्र, करपत्र, मुद्रिका, बृहिमुख आदि। ये शल्य औजार प्रायः लौह धातु या चांदी से बनाए जाते थे। इन्हें इस ढंग से बनाया जाता था कि इनकी धार कभी कमजोर न पड़े और इनमें कभी जंग न लगे। उन्हें रखने के लिए खासतौर से लकड़ी के डिब्बे भी तैयार किए जाते थे।

टाँके लगाने के लिए त्वचा और विभिन्न ऊतकों की मोटाई और रचना को ध्यान में रखते हुए तरह-तरह के धागे भी विकसित किए गए थे। कुछ का आधार रेशम की डोर होती थी तो कुछ सूत से बनाए जाते थे। कुछ चमड़े से तैयार किए जाते थे तो कुछ घोड़ों के बालों से। इसी प्रकार कई किस्म की सूइयाँ भी उपयोग में लाई जाती थीं-कुछ मोटी, कुछ पतली, कुछ अधिक घुमाव लिए हुए, तो कुछ कम और कुछ बिलकुल सीधी।

उन दिनों तरह-तरह की रूई, रेशम और मलमल से बनी पट्टियों का भी प्रचलन था।

दुर्घटनाओं में अथवा अस्त्र-शस्त्र के वार से फट गई आँतो के दो किनारों को एक दूसरे से जोड़ने के लिए सुश्रुत ने एक विलक्षण तकनीक खोज निकाली थी। इसके लिए वे एक किस्म के चींटो का उपयोग किया करते थे। फटी हुई आँत के दो किनारों को साथ मिलाकर उस पर चींटे छोड़ दिए जाते । वे चींटे अपने दाँतों से उस पर चिपक जाते, जिससे फटी हुई आँत के दो किनारे आपस में सिल से जाते। जब चीटों का शेष भाग काटकर अलग कर दिया जाता और उदर के बाहरी ऊतकों और त्वचा पर टाँके कस दिए जाते। कुछ ही दिनों में आँत का घाव भर जाता । साथ ही चीटों का सिर भी ऊतकों में अपने आप घुल-मिल जाता था। आजकल शल्य चिकित्सक शरीर के भीतरी अंगों के टाँके लगाने के लिए भेड़ की आँत से बनाए गए धागों का उपयोग करते हैं। उद्देश्य यह रहता है कि टाँके भीतर ही भीतर घुल जाएँ जिससे टाँके निकालने के लिए कम से कम शरीर का वह भाग दोबारा न खोलना पड़े।

सुश्रुत-संहिता में शल्यचिकित्सा के लगभग हर महत्वपूर्ण पहलू पर विस्तृत जानकारी दी गई है, जैसे ऑपरेशन के बाद क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए, रोगी का आहार कैसा होना चाहिए, घाव भर जाए इसके लिए कौन-कौन सी औषधियाँ देनी चाहिए आदि।

प्राचीन भारत के चिकित्सकों को औषधि विज्ञान के बारे में भी व्यापक जानकारी थी। उन्होंने बहुत सी जड़ी बूटियों की खोज की थी। साथ ही रसायन भी खोज निकाले थे। ये रोगी का दुख-दर्द दूर करने के काम आते थे।

शल्यक्रिया के दौरान रोगी को कष्ट न हो, इसके लिए कुछ ऐसी सक्षम जड़ी-बूटियाँ भी खोज निकाली गई थीं जिनके देने से रोगी गहरी नींद में सो जाता था।

मानव शरीर के भीतरी अंगों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सुश्रुत ने एक अनूठी विधि खोज निकाली थी। मृत शरीर को पहले किसी वजनदार वस्तु के साथ बाँधकर किसी छोटी-सी नहर में डाल दिया जाता था। एक सप्ताह बाद जब बाहरी त्वचा और ऊतक फूल जाते, तब झाड़ियों और लताओं से बने बड़े-बड़े ब्रुशों द्वारा उन्हें शरीर से अलग कर दिया जाता था। इससे शरीर के आंतरिक अंगों की रचना स्पष्ट हो जाती थी।

सुश्रुत जितने बड़े शल्यचिकित्सक थे, उतने ही श्रेष्ठ गुरु भी थे। शल्यकला का प्रारंभिक प्रशिक्षण देने के लिए वे अपने शिष्यों को कंद-मूल, फल-फूल, पेड़-पौधों की लताओं, पानी से भरी मशकों, चिकनी मिट्टी के ढाँचों और मलमल से बने मानव-पुतलों पर दिनोंदिन अभ्यास करवाते। चीरा कैसे लगाना है, उसे कितना लंबा, कितना गहरा रखना है-इसका अभ्यास प्राप्त करने के लिए शिष्यों को ककड़ी, करेला, तरबूज जैसे फलों और सब्जियों पर कई-कई दिनों तक अभ्यास करना पड़ता था। किसी घाव की गहराई कैसे पहचानें और उसे भरने के लिए क्या-क्या तकनीक अपनाएँ इसका प्रशिक्षण दीमक खाई लकड़ी के द्वारा दिया जाता, जिससे कि शिक्षार्थी रुग्ण शरीर की स्थिति का सही अंदाजा लगा सकें। अभ्यास के दौरान कमल के फूल की डंडी, शिरा (रक्तवाहिनी) बन जाती, जिसे शिष्य को सूई द्वारा बेधना पड़ता था। इसी तहर टाँका लगाने का प्रशिक्षण तरह-तरह के कपड़ों और चमड़े पर दिया जाता। खुरदरा चमड़ा, जिस पर से बाल न हटाए गए हों, उस पर खुरचने की कला सिखाई जाती थी। पट्टी बाँधने का ज्ञान देने के लिए मानव पुतलों का सहारा लिया जाता था।

इस प्रशिक्षण में उत्तीर्ण होने के बाद ही शिष्य के प्रशिक्षण का दूसरा चरण शुरू होता। अब उसे किसी कुशल शल्य चिकित्सक की देखरेख में रख दिया जाता था। वह तरह-तरह की शल्य क्रियाएँ देखता और उनसे सीखता जाता। फिर कुछ समय बाद जब वह पूरी तरह परिपक्व हो जाता, तब उसे गुरु की देखरेख में स्वयं ऑपरेशन करने की अनुमति दी जाती थी। इस तरह पूर्ण प्रशिक्षण और अनुभव पाकर ही वह पाठशाला से बाहर निकलता था।

सुश्रुत मूलत: शल्य चिकित्सक थे। किंतु उन्होंने क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मधुमेह, हृदय रोग, एनजाइमा एवं विटामिन सी की कमी से होने वाले रोग स्कर्वी के बारे में भी महत्वपूर्ण जानकारी दी।

ईसा से 600 वर्ष पूर्व और सन् 1000 ई. तक का समय भारतीय चिकित्सा विज्ञान के लिए स्वर्णिम युग था। अत्रेय, जीवक, चरक और वाग्भट्ट जैसे बहुत से यशस्वी चिकित्सा शास्त्रियों ने भारत की पावन भूमि पर जन्म लिया। काशी के साथ-साथ नालंदा और तक्षशिला के प्राचीन विश्वविद्यालय भी सैकड़ों वर्षों तक उच्चकोटि की शिक्षा के लिए विश्वविख्यात रहे। यहाँ दूर-दूर से शिक्षार्थी आते और चिकित्सा विज्ञान में निपुण होकर मानव कल्याण की प्रतिज्ञा लेते। चिकित्सा विज्ञान के कुछ इतिहासकारों का तो यह भी कहना है कि यूनानी चिकित्सा पद्धति के बहुत से सिद्धांत प्राचीन भारतीय चिकित्सकों के विचारों पर ही आधारित हैं।

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. 'सुश्रुत संहिता' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. मानव शरीर के भीतरी अंगों की बनावट की जानकारी प्राप्त करने की सुश्रुतयुगीन पद्धति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. सुश्रुत संहिता के अनुसार शल्य चिकित्सा का प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाता था ?
4. सुश्रुत को शल्य चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य किन रोगों की महत्वपूर्ण जानकारी थी ?
5. सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा की कौन-कौन सी विधियों का वर्णन किया गया है ?
6. महर्षि सुश्रुत के विषय में आप क्या जानते है ? विस्तार पूर्वक लिखिए।
7. भारतीय चिकित्सा विज्ञान का 'स्वर्णयुग' किसे कहा जाता है और क्यों ?

योग्यता विस्तार

1. हमारे देश में पाए जाने वाले औषधीय महत्व के पेड़-पौधों के नामों की सूची बनाइए।
2. नीम, आँवला, तुलसी, पुदीना, अदरक, हर्र, बहेड़ा आदि औषधीय पौधों के गुणों की जानकारी दादी माँ अथवा अन्य व्यक्ति से प्राप्तकर, सूची बनाइए।
3. हमारे देश में वर्तमान में चिकित्सा की कौन-कौन सी पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जानकारी एकत्रित कीजिए।
4. औषधीय खेती हेतु सरकार द्वारा क्या-क्या प्रयास किए जा रहे हैं, जानकारी प्राप्त कीजिए।

शब्दार्थ

शल्य चिकित्सा=चीड़-फाड़ द्वारा उपचार। **प्रवर्तक**=आरंभ करने वाला। **ओत-प्रोत**= परिपूर्ण। **अद्वितीय** = जिसके समान दूसरा न हो। **तकनीक** = पद्धति। **ऊतक**=तन्तु। **रुग्ण** = अस्वस्थ। **विलक्षण** = अद्भुत। **मशक** = बकरी की खाल का बना थैला जो पानी ढोने के काम आता है।

थके हुए कलाकार से

- धर्मवीर भारती

सृजन की थकन भूल जा देवता !

अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अभी तो पलक में नही खिल सकी,
नवल कल्पना की मृदुल चाँदनी।
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली,
नहीं जिन्दगी की सुरभि में सनी!
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं,
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता!
सृजन की थकन भूल जा देवता !
रुका तू , गया रुक जग का सृजन,
तिमिरमय नयन में डगर भूलकर,
कहीं खो गई रोशनी की किरन,
अलस बादलों में कहीं सो गया,
नई सृष्टि का सप्तरंगी सपन,
रुका तू, गया रुक जग का सृजन,
अधूरे सृजन से निराशा भला,
किसलिए जब अधूरी स्वयं पूर्णता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता !
प्रलय से निराशा तुझे हो गई ?
सिसकती हुई साँस की जालियों में,
सबल प्राण की अर्चना खो गई,
थके बाहुओं में अधूरी प्रलय,
'औ' अधूरी सृजन-योजना खो गई,
थकन से निराशा तुझे हो गई ?
इसी ध्वंस में मूर्छित-सी कहीं
पड़ी हो नई जिन्दगी, क्या पता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. अधबनी-धरा पर अभी क्या-क्या बनना शेष है ?
2. स्वर्ग की नींव का पता किस प्रकार लग सकता है ?
3. कवि के अनुसार प्रलय से कलाकार को निराश क्यों नहीं होना चाहिए ?
4. 'थके हुए कलाकार से' कविता का केन्द्रीय-भाव स्पष्ट कीजिए।
5. कवि ने अधूरे सृजन से निराश न होने की बात कहकर क्या संकेत देना चाहा है ?

योग्यता विस्तार

1. धर्मवीर भारती की अन्य कविताएँ पुस्तकालय से खोजकर पढ़िए।
2. मध्यप्रदेश की लोक-कलाओं के बारे में जानकारी एकत्रित कीजिए।
3. आपके गाँव/शहर में कौन-कौन सी कलाओं के कलाकार निवास करते हैं? सूचीबद्ध कीजिए।
4. मिट्टी का उपयोग कर क्या आप किसी कृति का सृजन कर सकते हैं, यदि हाँ, तो बन जाइए कलाकार।

शब्दार्थ

सृजन=निर्माण। **धरा**=पृथ्वी। **ज्योत्सना** = चाँदनी। **सुरभि** = सुगंध। **तिमिरमय** = अंधकार युक्त। **ध्वंस** = नाश। **डगर** = मार्ग।

भगिनी निवेदिता

- प्रवाजिका आत्मप्राणा

भारत माता की अति प्रिय पुत्री, स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता पर हम जितना गर्व करें उतना हमारे लिए ही अच्छा है, इसीलिए कि इससे हमें अपने व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन को दिशा प्राप्त होगी, प्रेरणा मिलेगी। जिसने स्वयं को किसी भारतीय से अधिक अपने आप को भारत की माटी से एकाकार कर लिया, ऐसी भारतीय ज्ञान, दर्शन, संस्कृति, परम्परा व जीवन मूल्यों की जीवंत प्रतीक 'भगिनी निवेदिता' प्रत्येक भारतीय के लिए ऋषि तुल्य प्रात: स्मरणीय हैं। रामकृष्ण मिशन की प्रवाजिका आत्मप्राणा ने उनका जीवन, कार्य व सबसे ऊपर भारत के लिए उनका समर्पण अपनी पुस्तक 'भगिनी निवेदिता' में जिस सुंदर ढंग से गूँथा है, उसी का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

दार्जिलिंग के पर्वतों की सैर करने यदि हम जाएँ तो रेल्वे स्टेशन के नीचे हमें ईटों का बना एक स्मारक दिखाई देगा। उस स्थान की शान्त नीरवता से लगता है मानों प्रकृति माता ने सुरभित पवन और सुनहरी धूप की बाँहों में स्मारक को लपेट लिया है; और चहचहाती चिड़ियाओं और नाचते फूलों द्वारा वह उनके वहाँ होने का संकेत कर रही है।

यदि उसकी ओर तुम्हारा ध्यान जाए और तुम जानना चाहो कि यह किसका स्मारक है तो तुम्हें वहाँ संगमरमर का एक पत्थर लगा दिखाई देगा जिस पर लिखा है -

विश्राम स्थली
भगिनी निवेदिता रामकृष्ण परमहंस की
जिसने अपना सर्वस्व
भारतमाता को अर्पित किया।

निवेदिता नाम का अर्थ है 'समर्पित' जिसने सब कुछ भेंट चढ़ा दिया हो। कौन थी वह ? वह सब कुछ क्या था जो उसने भारत को अर्पित कर दिया और क्यों ? और क्यों स्नेहवश, लोगों ने उसके लिए यह स्मारक खड़ा किया ? यह जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि निवेदिता भारतीय नहीं थी, और उनका जन्म भी भारत में नहीं हुआ था।

भगिनी निवेदिता का वास्तविक नाम मार्गरेट एलिजाबेथ नोबुल था। उनका जन्म सुदूर आयरलैण्ड में 28 अक्टूबर 1867 को हुआ था। उनके परिवार का नाम नोबुल था। उनके पिता सोमुएल रिचमण्ड धर्मोपदेशक थे। माता का नाम था इजाबेल हेमिल्टन।

धार्मिक आस्था और लोगों की सेवा के संस्कार उन्हें अपने पिता से विरासत में मिले थे। पिता की मृत्यु के उपरांत अपने कठिन जीवन में भी उन्होंने अध्ययन नहीं छोड़ा। अपनी सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी कॉलेज की शिक्षा पूरी कर ली। तदुपरांत वे इंग्लैण्ड गईं और सन् 1884 में केस्विक्स के एक स्कूल में पढ़ाने लगीं। सन् 1890 में वे विम्बलडन आईं और उन्होंने अपना एक स्कूल खोल लिया । थोड़े ही समय में वे अपने आकर्षक व्यक्तित्व, गहन ज्ञान, सेवा-भाव और धार्मिक चिन्तन के लिए लन्दन में प्रसिद्ध हो गईं। वे अपना अधिकांश समय अध्ययन-मनन और सत्य की खोज में लगाती थीं। और तभी एक घटना घटी जो उनके जीवन को एक सर्वथा नया मोड़ दने वाली थी। एक 'योगी' का लन्दन में आगमन हुआ। वह एक संन्यासी था, उसका नाम था 'स्वामी विवेकानन्द'। स्वामी जी 1893 के शिकागो के

विश्व धर्म सम्मेलन में ख्याति अर्जित कर अपने कुछ मित्रों के आग्रह पर इंग्लैंड आए थे। मार्गरेट की स्वामी जी से प्रथम भेंट यहीं हुई थी। मार्गरेट ने स्वामी जी के अनेक प्रवचन सुने, उनसे वाद-विवाद, तर्क-वितर्क किया और अपने आप को पूर्ण संतुष्ट कर लेने के उपरांत ही उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को अपना आदर्श चुना। स्वामी जी के आह्वान पर मार्गरेट ने भारत जाना तय कर लिया।

28 अप्रैल 1896 को वे भारत आईं। वे बहुत अधिक प्रसन्न थीं। वे गंगा किनारे वेलूर मठ की एक कुटिया में दो अन्य अमेरिकन महिलाओं के साथ रहने लगीं जो स्वामी जी की शिष्या थीं। 15 मार्च 1898 को स्वामी जी ने उन्हें नया नाम 'निवेदिता' दिया और उन्हें भगवान व भारत माता के चरणों में अर्पित कर दिया।

स्वामी जी के साथ वे हिमालय की पैदल यात्रा पर निकलीं। मार्ग में पटना, वाराणसी, लखनऊ, पंजाब में रावलपिंडी, बारामूला होते हुए वे कश्मीर पहुँचे। प्रथम बार उन्हें भारत के तीर्थ, नदियाँ, पर्वत, ग्राम्य-जीवन व धर्मप्राण श्रद्धालु भारतीयों को देखने-समझने का अवसर मिला। स्वामी जी उन्हें भारत के इतिहास, भूगोल स्थानीय विशेषताओं, धर्म-दर्शन आदि के विषय में बताते रहते थे। वे अमरनाथ की दुर्गम यात्रा पर स्वामी जी के साथ अकेली गईं। इस यात्रा ने मानों उनके जीवन को परिवर्तित ही कर दिया। यहाँ उनकी अनेक साधु-संतों से भेंट हुई जो विभिन्न सम्प्रदायों के थे। इससे उन्हें धर्म को समझने में सहायता मिली।

लौटते समय वे लाहौर, आगरा, वाराणसी होते हुए कलकत्ता लौटे। यह यात्रा उनके आगामी जीवन की तैयारी थीं। उन्होंने गीता का अध्ययन आरम्भ किया और वे निरन्तर ध्यान करने लगीं। उन्होंने अपने आप को 'आत्मन: मोक्षार्थ जगदहिताय च' अर्थात जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य आत्मा के मोक्ष और जगत के हित के लिए समर्पित कर दिया। इसका अर्थ था कठोर साधना करते हुए पवित्र, सादा, निर्मल जीवन जीया जाए और विनम्रता पूर्वक जन-कल्याण में अपने आप को लगा दिया जाए। वे कलकत्ता में शारदा माँ के साथ रहतीं।

13 नवम्वर 1896 को कलकत्ता में अपने निवास के समीप ही उन्होंने लड़कियों का एक स्कूल आरम्भ किया। श्री माँ ने इस विद्यालय का उद्घाटन किया छोटी लड़कियों को उन्होंने पढ़ना-लिखना, मिट्टी का काम, चित्रकारी आदि सिखाया। निवेदिता को इसमें बड़ा सुख मिलता।

अगले वर्ष ही कलकत्ता में प्लेग फैल गया। स्वामी जी ने अपने सारे शिष्यों को सेवा कार्य में लगा दिया। निवेदिता ने युवाओं की एक टोली बनाई यह टोली दिन-रात, भूख-प्यास की चिन्ता छोड़ सेवा कार्य में जुटी रहती। रोगियों की चिकित्सा, सेवा, सफाई आदि कार्य यह टोली करती। निवेदिता स्वयं झाड़ू लेकर सफाई करतीं। भगिनी निवेदिता को इस निस्वार्थ सेवा का क्या पुरस्कार मिला ? लोगों का स्नेह, प्रेम और आदर! जिला चिकित्सा अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा - 'निवेदिता अपने आराम, स्वास्थ्य, भोजन तक की चिन्ता न कर गन्दी बस्तियों में घूमती रही।'

निवेदिता ने अपना नया विद्यालय एक नए प्रयोग के रूप में आरम्भ किया था किन्तु छ: माह में ही पता चल गया कि धन के अभाव के कारण इसका चलना संभव नहीं। धन संग्रह के लिए निवेदिता ने इंग्लैण्ड-अमेरिका जाना तय किया। संयोग से स्वामी विवेकानन्द जी अपनी दूसरी विदेश यात्रा पर निकल रहे थे। निवेदिता ने अपने गुरु के साथ जाने के सान्निध्य के इस सुयोग को नहीं छोड़ा। एक मास से अधिक की इस समुद्र यात्रा में निवेदिता को अपने गुरु से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

धन संग्रह के लिए इंग्लेण्ड के उपरांत अमेरिका गईं। यहाँ उन्होंने देखा कि तथाकथित लोगों द्वारा भारत की

झूठी व घृणित तस्वीर प्रस्तुत की जा रही थी- विशेषकर भारतीय महिलाओं की दुरावस्था पर। उन्होंने तुरंत इसका प्रतिकार आरम्भ किया और न्यूयार्क, शिकागो, जैक्शन, डिट्रायड, बॉस्टन आदि अनेक स्थानों पर भारतीय नारी का सही चित्र रखा। वे भारतीय महिलाओं का सरल स्वभाव, हृदय की पवित्रता, उनकी निष्ठा सच्चाई के चित्र खींचती। वे अपने अभियान में सफल रहीं। वे अमेरिका से फ्रांस व पुनः इंग्लैण्ड गईं।

सन् 1901 में वे भारत लौट आईं। चार वर्ष पूर्व के और अब के आने में अंतर था। तब वे भयभीत सी एक विदेशी धरती पर आई थीं किंतु वे आज अपनी माता, मातृभूमि की गोद में लौटी थीं। वे कलकत्ता के अपने इसी बागपाड़ा स्थित निवास में रहने लगी थीं, जहाँ वे जीवन के अंत तक रहीं। इसे वे छोड़ भी कैसे सकती थीं। शारदा माँ और प्रवास में आने पर स्वामी जी व उनके अनेक शिष्य भी यहीं रहते थे। यहीं उनका प्रथम विद्यालय भी था। यहीं देश के बड़े-बड़े राजनेता, समाज-सुधारक, धार्मिक नेता श्री माँ व स्वामी विवेकानन्द के दर्शन करने आते थे।

प्रारम्भ में विद्यालय में कोई अपनी बालिका को नहीं भेजता था, किन्तु धीरे-धीरे निवेदिता का सरल व सेवा-भावी व्यक्तित्व प्रभावी हुआ और विद्यालय बढ़ने लगा। विद्यालय चलाने के लिए उनके मित्र धन भेजते, शेष वह पुस्तकें लिख कर पूरा करतीं। धीरे-धीरे अलग से ही एक महिला विद्यालय आरम्भ हो गया। आज भी उस स्थान पर ''रामकृष्ण शारदा मिशन भगिनी निवेदिता बालिका विद्यालय'' चल रहा है।

स्वामी जी अस्वस्थ थे और अधिकतर वेलूर-मठ में ही रहते थे। 2 जुलाई 1902 को वे अपने गुरु से मिलने आईं। स्वामी जी का उपवास था किन्तु उन्होंने निवेदिता को अत्यंत स्नेह सहित अपने पास बैठा अपने हाथ से भोजन कराया। फिर स्वयं ने जल से निवेदिता के हाथ धोए और तोलिए से हाथ पौंछे। निवेदिता ने इसका विनम्र विरोध किया और कहा ''स्वामी जी'' इस प्रकार की सेवायें तो मुझे आपकी करनी चाहिए, आप मेरे गुरु हैं। स्वामी जी ने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया, ''प्रभु यीशु ने तो अपने शिष्यों के पाँव धोए थे।'' निवेदिता ने उत्तर दिया, ''परन्तु ईसा मसीह ने तो ऐसा अपने अंतिम समय पर किया था।'' कहकर भी निवेदिता शायद इसका अर्थ नहीं समझ पाईं और लौट आईं और शुक्रवार की रात्रि में ही स्वामी जी ने देह त्याग कर दिया। निवेदिता पर मानो वज्रपात हुआ।

किन्तु वे निराश-उदास हो कर बैठ नहीं गईं। अपने मित्र को उन्होंने लिखा, वे मरे नहीं वे सदा हमारे साथ हैं। मैं तो बैठ कर दुख भी नहीं कर सकती हूँ। मैं केवल काम करना चाहती हूँ, काम ! उनके लिए यही सच्ची श्रद्धांजलि है।

अब तक वे केवल शिक्षा में ही अपनी शक्ति लगाए हुई थीं, किन्तु अब उनका क्षेत्र विस्तीर्ण हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि वे अब राजनैतिक स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान करेंगी। उन्होंने निर्भय होकर अपनी मूल जाति के विरोध में ही उग्र, तेजस्वी भाषण देना आरम्भ किया, लेख लिखे। वे सम्पूर्ण देश में घूमी और भावपूर्ण ओजस्वी भाषण दिए। युवक और युवतियाँ बड़ी संख्या में उनका व्याख्यान सुनने आते। एक बार उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''अपने देश का हित तुम्हारा सच्चा लक्ष्य होना चाहिए। उसे साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा कुशलता से लिखे गए लेखों अथवा चमत्कारिक भाषणों द्वारा पाने की चेष्ठा मत करो। सोचो, समूचा देश तुम्हारा देश है और तुम्हारे देश को काम की आवश्यकता है।'' जब देश में 'वन्दे-मातरम्' गाना अपराध था, उनकी पाठशाला में यह नित्य होता था।

सन् 1905 के प्रथम स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने बढ़ चढ़कर भाग लिया और स्वयं भी चर्खे का कता मोटा-झोटा स्वदेशी वस्त्र पहनने लगीं। अपने विद्यालय में उन्होंने चर्खा कातना आरम्भ करा दिया।